॥ श्री सुधर्मास्वामीने नमः ॥

अहो ! श्रुतम् - स्वाध्याय संग्रह [३]

कर्मग्रंथ [१-२-३]

[गाथा और अर्थ]

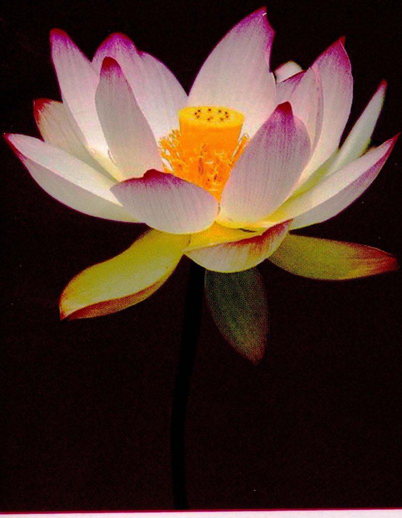

-: प्रकाशक :-

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

साबरमती, अहमदाबाद

॥ श्री सुधर्मास्वामीने नमः ॥

अहो ! श्रुतम् - स्वाध्याय संग्रह [३]

कर्मग्रंथ

[१-२-३]

[गाथा और अर्थ]

-: कर्ता :-

आ.श्री देवेन्द्रसूरिजी

अनुवादक : प्रथम कर्मग्रंथ : मुनि मनितप्रभसागरजी

द्वितिय-तृतिय कर्मग्रंथ : पू. आ. श्री रत्नसेनसूरिजी

-: संकलन :-

श्रुतोपासक

-: प्रकाशक :-

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

शा. वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन

हीराजैन सोसायटी, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५

फोन : २२१३२५४३, ९४२६५८५९०४

E-mail : ahoshrut.bs@gmail.com

प्रकाशक : श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार
प्रकाशन : संवत २०७४, द्वि.ज्येष्ठ सुद-५
वैराग्यदेशनादक्ष प.पू.आ.भ.श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के दीक्षादिन पर अर्पण...
आवृत्ति : प्रथम

ज्ञाननिधि में से

पू. संयमी भगवंतो और ज्ञानभंडार को भेट...

गृहस्थ किसी भी संघ के ज्ञान खाते में

२० रुपये अर्पण करके मालिकी कर सकते हैं।

प्राप्तिस्थान :

(१) सरेमल जवेरचंद फाईनफेब (प्रा.) ली.
672/11, बोम्बे मार्केट, रेलवेपुरा, अहमदाबाद-380002
फोन : 22132543 (मो.) 9426585904

(२) कुलीन के. शाह
आदिनाथ मेडीसीन, Tu-02, शंखेश्वर कोम्पलेक्ष, कैलाशनगर, सुरत
(मो.) 9574696000

(३) शा. रमेशकुमार एच. जैन
A-901, गुंदेचा गार्डन, लालबाग, मुंबई-12.
(मो.) 9820016941

(४) श्री विनीत जैन
जगद्गुरु हीरसूरीश्वरजी जैन ज्ञानभंडार,
चंदनबाला भवन, 129, शाहुकर पेठ पासे, मीन्ट स्ट्रीट, चेन्नाई-1.
(मो.) 9381096009, 044-23463107

(५) शा. हसमुखलाल शान्तीलाल राठोड
7/8, वीरभारत सोसायटी, टीम्बर मार्केट, भवानीपेठ, पूना.
(मो.) 9422315985

मुद्रक : **किरीट ग्राफिक्स**, अहमदाबाद (मो.) ९८९८४९००९१

कर्मविपाक - प्रथम कर्मग्रंथ

सिरिवीरजिणं वंदिअ, कम्मविवागं समासओ वुच्छं, ।
कीरई जिएण हेउहिं, जेणं तो भन्नए कम्मं ॥ १ ॥

श्री 'महावीर' जिनेश्वर परमात्मा को वंदन करके संक्षिप्त-थोड़े कथन में 'कर्मविपाक' नामक प्रथम कर्मग्रंथ को कहता हूँ। जीव के द्वारा जिन हेतुओं (मिथ्यात्व, असंयम आदि) से जो क्रिया की जाती है, उसे कर्म कहा जाता है। ॥ १ ॥

पयई-ठिइ-रस-पएसा, तं चउहा मोअगस्स दिट्ठंता, ।
मूल-पगइट्ठ उत्तर-पगइ अडवन्नसयभेयं ॥ २ ॥

कोई भी कर्म प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेश रूप चार प्रकार से बंधता है, जिसे मोदक के दृष्टान्त से समझना चाहिये । उसके मूल भेद आठ एवं उत्तरभेद एक सौ अट्ठावन हैं ॥ २ ॥

इह नाणदंसणावरण-वेअमोहाउ-नामगोआणि, ।
विग्घं च पणनवदु-अट्ठवीस चउतिसयदुपणविहं ॥ ३ ॥

कर्म के मूल रूप से आठ भेद होते हैं-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और

अन्तराय । इनके अनुक्रम से पांच, नौ, दो, अट्ठावीस, चार, एक सौ तीन, दो एवं पांच भेद होते हैं ॥ ३ ॥

मइसुअओहीमणकेवलाणि, नाणाणि तत्थ मइनाणं, ।
वंजणवग्गह चउहा, मणनयणविणिंदियचउक्का ॥ ४ ॥

ज्ञान पांच प्रकार के हैं–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, और केवलज्ञान । मतिज्ञान व्यंजनावग्रह की अपेक्षा से मन और चक्षुरिन्द्रिय को छोड़कर शेष इन्द्रिय चतुष्क के भेद से चार प्रकार के होते हैं ॥ ४ ॥

अत्थुग्गह-ईहाडवाय-धारणा करण-माणसेहिं छहा, ।
इय अड्ढवीस-भेअं, चउदसहा वीसहा व सुयं ॥ ५ ॥

मन और चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त चार इन्द्रियों की अपेक्षा से व्यंजनावग्रह चार प्रकार के होते हैं । अर्थावग्रह, ईहा, अपाय एवं धारणा, पाँच इन्द्रियों एवं मन की अपेक्षा से छह–छह प्रकार के होते हैं । इस प्रकार मतिज्ञान के अट्ठावीस भेद होते हैं । श्रुतज्ञान के चौदह अथवा बीस भेद होते हैं ॥ ५ ॥

अक्खर सन्नी सम्मं, साइअं खलु सपज्जवसिअं च, ।
गमियं अंगपविट्ठं, सत्त वि एए सपडिवक्खा ॥ ६ ॥

अक्षर श्रुत, संज्ञी श्रुत, सम्यक् श्रुत, सादि श्रुत, सपर्यवसित श्रुत, गमिक श्रुत, अंगप्रविष्ट श्रुत, ये सात भेद प्रतिपक्ष सहित चौदह भेद श्रुतज्ञान के रूप में जानने चाहिये ॥ ६ ॥

पज्जयअक्खर-पयसंघाया पडिवत्ति तह य अणुओगो, ।
पाहुड पाहुड पाहुड वत्थू पुव्वा य ससमासा ॥ ७ ॥

पर्याय प्राभृत-प्राभृतश्रुत, श्रुत, अक्षर श्रुत, पद श्रुत, संघात श्रुत, प्रतिपत्ति श्रुत, अनुयोग श्रुत, प्राभृत श्रुत, वस्तु श्रुत और पूर्व श्रुत, श्रुतज्ञान के इन दस भेदों के समास सहित बीस भेद होते हैं ॥ ७ ॥

अणुगामि वड्ढमाणय-पडिवाइयरविहा छहा ओहि, ।
रिउमई-विउलमईमणनाणं केवलमिगविहाणं ॥ ८ ॥

अवधिज्ञान के अनुगामी, वर्धमान और प्रतिपाती रूप तीन भेद होते हैं तथा उसके प्रतिपक्षी तीन भेद (अननुगामी, हीयमान एवं अप्रतिपाती) होने से वह छह प्रकार का है। ऋजुमति एवं विपुलमति रूप मनःपर्यवज्ञान के दो भेद हैं तथा केवलज्ञान एक भेद वाला ही है ॥ ८ ॥

एसिं जं आवरणं, पडुव्व चक्खुस्स तं तयावरणं, ।
दंसण चउ पण निद्दा, वित्तिसमं दंसणावरणं ॥ ९ ॥

ज्ञानावरणीय कर्म चक्षु पर बंधी हुई पट्टी के समान है। पांचों ज्ञानों को आवृत्त करने वाले वे-वे आवरण उस-उस ज्ञान के आवरणीय कर्म कहलाते हैं। द्वारपाल के समान कहलाने वाले दर्शनावरणीय कर्म की दर्शनावरण चतुष्क एवं निद्रापंचक रूप नौ प्रकृतियाँ होती हैं ॥ ९ ॥

चक्खु दिट्ठि-अचक्खु, सेसिंदिअ-ओहि केवलेहिं च, ।
दंसणमिह सामन्नं, तस्सावरणं तयं चउ हा ॥ १० ॥

पदार्थों का सामान्य बोध दर्शन कहलाता है। चक्षु के द्वारा जानना चक्षुदर्शन है, शेष इन्द्रियों से जानना अचक्षुदर्शन है, इसके अतिरिक्त अवधिदर्शन एवं केवलदर्शन होने से दर्शन चार प्रकार का है। उसका आवरण भी चार प्रकार का है ॥ १० ॥

सुहपडिबोहा निद्दा, निद्दा निद्दा य दुक्खपडिबोहा, ।
पयला ठिओवविट्ठस्स-पयल पयला उ चंकमओ ॥ ११ ॥

जगाने पर सुखपूर्वक जागृत हो, वह निद्रा है। दुःखपूर्वक (मुश्किल से) जागृत हो, वह निद्रा-निद्रा है। खड़े-खड़े अथवा बैठे-बैठे नींद लेना प्रचला है तथा चलते-चलते नींद लेना प्रचला-प्रचला है ॥ ११ ॥

दिणचिंति-अत्थकरणी, थीणद्धी अद्धचक्की-अद्धबला, ।
महुलित्तखग्गधारा-लिहणं व दुहाउ वेअणिअं ॥ १२ ॥

दिन में सोचा हुआ कार्य जिस निद्रा के वशीभूत होकर जीव रात्रि में करता है, उसे स्त्यानर्द्धि निद्रा कहते हैं। स्त्यानर्द्धि निद्रा वाले जीव का बल अर्द्धचक्रीश्वर (वासुदेव) के बल से आधा बल होता है, वेदनीय कर्म मधुलिप्त तलवार को चाटने के समान है यह दो प्रकार का है (१) शातावेदनीय कर्म (२) अशातावेदनीय कर्म ॥ १२ ॥

ओसन्नं सुरमणुए, सायमसायं तु तिरिअ-निरएसु, ।
मज्जं व मोहणीअं, दुविहं दंसण-चरणमोहा ॥ १३ ॥

देव और मनुष्य गति में अधिकतर शाता वेदनीय कर्म का एवं तिर्यंच तथा नरक गति में अधिकतर अशाता वेदनीय कर्म का उदय होता है। मदिरा-पान के समान मोहनीय कर्म दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय रूप दो प्रकार के कहे गए हैं ॥ १३ ॥

दंसणमोहं तिविहं, सम्मं मीसं तहेव मिच्छत्तं, ।
सुद्धं अद्धविसुद्धं, अविसुद्धं तं हवई कमसो ॥ १४ ॥

दर्शन मोहनीय कर्म तीन प्रकार के है - (१) सम्यक्त्व मोहनीय (२) मिश्र मोहनीय (३) मिथ्यात्व मोहनीय । अनुक्रम से पूर्वोक्त तीनों भेद, शुद्ध, अर्द्धशुद्ध और अशुद्ध पुंज रूप होते हैं ॥ १४ ॥

जिअअजिअपुण्णपावा-सवसंवरबंधमुक्खनिज्जरणा, ।
जेणं सद्दहइ तयं, सम्मं खइगाइ-बहुभेअं ॥ १५ ॥

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, इन नौ तत्त्वों पर जिसके द्वारा श्रद्धा प्रकट होती है, उसे सम्यक्त्व कहते हैं। वह सम्यक्त्व क्षायिक आदि अनेक भेदों वाला है ॥ १५ ॥

मीसा न रागदोसो, जिणधम्मे अंतमुहू जहा अन्ने, ।
नालियरदीव-मणुणो, मिच्छं जिणधम्म-विवरीअं ॥ १६ ॥

जिस प्रकार नारियल द्वीप के मनुष्य को अन्न पर न प्रीति–राग होता है, न अप्रीति–द्वेष होता है, उसी प्रकार मिश्र मोहनीय के उदयवाले जीव को जिनप्ररूपित धर्म पर न राग (प्रीति) भाव होता है, न द्वेष (अप्रीति) भाव होता है। मिश्र मोहनीय का काल अन्तर्मुहूर्त्त का होता है।

अरिहंत–जिन प्रतिपादित धर्म (जैन धर्म) से विपरीत श्रद्धा करवाने वाला मिथ्यात्व मोहनीय है ॥१६॥

सोलस कसाय नव नोकसाय, दुविहं चरित्तमोहणीअं, ।
अणअपच्चक्खाणा, पच्चक्खाणा य संजलणा ॥ १७ ॥

चारित्र मोहनीय दो प्रकार के हैं – कषाय और नोकषाय। कषाय चारित्र मोहनीय सोलह प्रकार के हैं और नोकषाय चारित्र मोहनीय नौ प्रकार के हैं। कषाय चार प्रकार के होते हैं – (१) अनन्तानुबंधी कषाय (२) अप्रत्याख्यानी कषाय (३) प्रत्याख्यानी कषाय (४) संज्वलन कषाय ॥१७॥

जाजीव वरिस–चउमास–पक्खगा निरयतिरिअ–नर–अमरा, ।
सम्माणु–सव्वविरई, अह क्खायचरित्त–घायकरा ॥ १८ ॥

इन चारों कषायों (अन्तानुबंधी आदि) का काल क्रमशः यावज्जीवन, एक वर्ष, चार मास और पन्द्रह दिवस है। क्रमशः नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति देने वाला है तथा क्रमशः सम्यक्त्व, देशविरति, सर्वविरति और यथाख्यात चारित्र का घातक है ॥१८॥

जल-रेणु-पुढवी-पव्वय-राईसरिसो चउव्विहो कोहो, ।
तिणिसलया-कट्ठट्ठिअ - सेलत्थंभोवमो माणो ॥ १९ ॥

संज्वलन, प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी एवं अनंतानुबंधी क्रोधकषाय अनुक्रम से पानी की, धूल की, पृथ्वी की और पर्वत की रेखा के समान जानने चाहिये । उपरोक्त संज्वलनादि चारों मान कषाय क्रमशः नेतर की सोटी, लकड़ी, अस्थि एवं शैल के स्तंभ के समान जानना चाहिये ॥१९॥

मायावलेहि-गोमुत्ति - मिंढसिंग घणवंसिमूल-समा, ।
लोहो हलिद्दखंजण, कद्दमकिमिरागसामाणो (सारिच्छो) ।२०।

संज्वलनादि चारों प्रकार की माया क्रमशः लकड़ी की छाल, गोमूत्रिका, घेटे के शृंग (सींग) एवं मजबूत बांस के मूल के समान जाननी चाहिये । इसी प्रकार चार प्रकार के लोभ अनुक्रम से हल्दी, काजल, कीचड़ एवं कीरमजी के रंग के समान जानना चाहिये ॥२०॥

जस्सुदया होइ जीए, हास रइ अरइ सोग भय कुच्छा, ।
सनिमित्तमन्नहा वा, तं इह हासाइमोहणियं ॥ २१ ॥

जिसके उदय से जीव को निमित्त सहित अथवा निमित्त रहित हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा उत्पन्न होती है, उन्हें अनुक्रम से हास्य मोहनीय, रति मोहनीय, अरति मोहनीय, शोक मोहनीय, भय मोहनीय और जुगुप्सा मोहनीय कर्म कहते हैं ॥२१॥

पुरिसित्थितदुभयंपइ अहिलासो जव्वसा हवई सो उ, ।
थी-नर-नपु-वेउदओ, फुंफुम-तण-नगर दाहसमो ॥ २२ ॥

जिस कर्म के उदय से जीव को पुरुष के प्रति, स्त्री के प्रति और उभय (स्त्री-पुरुष) दोनों के प्रति भोग भोगने की अभिलाषा होती है, उन्हें अनुक्रम से स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद कहते हैं। ये तीनों वेद अनुक्रम से बकरी के मल की अग्नि के तुल्य, घास की अग्नि के तुल्य और नगराग्नि के तुल्य जानने चाहिये ॥२२॥

सुर नर तिरि-निरयाऊ, हडिसरिसं नामकम्म चित्तिसमं, ।
बायाल-तिनवइविहं, तिउत्तरसयं च सत्तट्ठी ॥ २३ ॥

आयुष्य कर्म को बेड़ी के समान कहा गया है। यह चार प्रकार का है- (१) देवायुष्य (२) मनुष्य आयुष्य (३) तिर्यंच आयुष्य और (४) नरक आयुष्य।

नाम कर्म चित्रकार के समान है। उसकी अपेक्षा बुद्धि से चार प्रकार के भेद हैं-(१) बयालीस भेद (२) तिरानवे भेद (३) एक सौ तीन भेद (४) सड़सठ भेद ॥२३॥

गइ-जाइ तणु उवंगा, बंधण-संघायणाणि संघयणा, ।
संठाण वण्णगंधरस-फास-अणुपुव्वि विहगगइ ॥ २४ ॥

गति, जाति, शरीर, उपांग, बंधन, संघातन, संघयण, संस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी और विहायोगति, ये चौदह पिण्ड प्रकृतियाँ हैं ॥२४॥

पिंडपयडित्ति चउदस, परघा - ऊसास- आयवुज्जोअं, ।
अगुरुलहु-तित्थ निमिणो, वघायमिअ अट्ठ पत्तेआ ॥२५॥

पूर्वोक्त गाथा में कही गई (गति, जाति आदि) कुल चौदह पिंड प्रकृतियाँ हैं । प्रत्येक प्रकृतियाँ आठ हैं- (१) पराघात (२) उच्छ्वास (३) आतप (४) उद्योत (५) अगुरुलघु (६) तीर्थंकर (७) निर्माण और (८) उपघात ॥२५॥

तस-बायर-पज्जत्तं, पत्तेय-थिरं सुभं च सुभगं च, ।
सुसराइज्जजसं तस-दसगं थावरदसं तु इमं ॥ २६ ॥

१. त्रस २. बादर ३. पर्याप्त ४. प्रत्येक ५. स्थिर ६. शुभ ७. सौभाग्य ८. सुस्वर ९. आदेय और १०. यश नाम कर्म, यह त्रस दशक कहलाता है । इसके विपरीत स्थावर दशक इस प्रकार हैं ॥२६॥

थावर-सुहुम-अपज्जं, साहारण-अथिर-असुभ-दुभगाणि, ।
दुस्सर-णाइज्ज-जस मिअ नामे सेअरा वीसं ॥ २७ ॥

१. स्थावर २. सूक्ष्म ३. अपर्याप्त ४. साधारण ५. अस्थिर ६. अशुभ ७. दौर्भाग्य ८. दुःस्वर ९. अनादेय १०. अपयश, ये स्थावर दशक कहलाते हैं । नाम कर्म में स्थावर दशक और उसके विपरीत (प्रतिपक्ष) त्रस दशक सहित बीस प्रकृतियाँ होती हैं ॥२७॥

तसचउ थिरछक्कं अथिरछक्कं सुहुमतिग थावरचउक्कं, ।
सुभगतिगाइ विभासा, तयाइसंखाहि पयडीहिं ॥ २८ ॥

त्रसचतुष्क, स्थिरषट्क, अस्थिरषट्क, सूक्ष्मत्रिक, स्थावरचतुष्क, सौभाग्य त्रिक आदि संज्ञाएँ संख्यानुसार प्रकृति की आदि (शुरू) से गिननी चाहिये ॥२८॥

वन्नचउ-अगुरु लहु चउ, तसाइ-दु-ति-चउर-छक्कमिच्चाई, ।
इअ अन्नावि विभासा, तयाइसंखाहि पयडीहिं ॥ २९ ॥

वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, त्रस द्विक, त्रस त्रिक, त्रस चतुष्क, त्रस षट्क इत्यादि की भाँति अन्य संज्ञाएँ भी उस-उस कर्म (प्रकृति) के आदि (शुरूआत) में रखकर उतनी संख्यावाली प्रकृतियों द्वारा करनी चाहिये ॥२९॥

गइआईण उ कमसो, चउपण-पणतिपण-पंच छ-छक्कं, ।
पणदुग-पणट्ठचउदुग, इअ उत्तरभेय पणसट्ठी ॥ ३० ॥

गति आदि चौदह पिंड प्रकृतियों के अनुक्रम से चार, पाँच, पाँच, तीन, पाँच, पाँच, छह, छह, पाँच, दो, पाँच, आठ, चार और दो उत्तरभेद होने से कुल पैंसठ भेद होते हैं ॥३०॥

अडवीसजुआ त्तिनवइ - संते वा पनरबंधणे तिसयं, ।
बंधणसंघायगहो, तणूसु सामन्न-वण्णचऊ ॥ ३१ ॥

(पूर्वोक्त गाथा में बताये गए पैंसठ भेदों में) अट्ठाईस भेद जोड़े जाएँ तो नाम कर्म के ९३ भेद होते हैं। वे सत्ता में गिने जाते हैं। पाँच के स्थान पर पन्द्रह बंधन गिने जाएँ

तो एक सौ तीन भेद होते हैं । वे भी सत्ता में लिये जाते हैं । बंधन और संघातन की गणना शरीर नामकर्म में कर ली जाये और वर्णचतुष्क सामान्य रूप से लिये जाएँ तो सड़सठ भेद होते हैं ॥३१॥

इअ सत्तट्ठी बंधोदए अ न य सम्म-मीसया बंधे, ।
बंधुदए सत्ताए, वीस-दुवीसट्ठ वण्णसयं ॥ ३२ ॥

इस प्रकार नाम कर्म की सड़सठ प्रकृतियाँ बंध और उदय में होती हैं । मोहनीय कर्म की दो प्रकृतियाँ, सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रबंध में नहीं होती हैं । बंध, उदय और सत्ता में क्रमशः एक सौ बीस, एक सौ बाईस और एक सौ अट्ठावन प्रकृतियाँ होती हैं ॥३२॥

निरयतिरि-नरसुरगई, इगबिअतिअ-चउपणिंदि जाईओ, ।
ओरालविउव्वाहारग-तेअकम्मण पणसरीरा ॥ ३३ ॥

गति नाम कर्म के चार भेद इस प्रकार जानने चाहिये- नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देव गति । जाति नाम कर्म पांच प्रकार के होते हैं - एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, पंचेन्द्रिय जाति । शरीर नामकर्म के पाँच प्रकार होते हैं - औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर ॥३३॥

बाहूरु पिट्ठि सिर उर, उयरंग उवंग अंगुलीपमुहा, ।
सेसा अंगोवंगा, पढमतणुतिगस्सुवंगाणि ॥ ३४ ॥

दो भुजा, दो जंघा, पीठ, मस्तक, हृदय और उदर, ये आठ अंग होते हैं । अंगुली आदि उपांग कहलाते हैं । शेष (रेखा आदि) अंगोपांग कहलाते हैं । प्रथम तीन शरीरों में ही अंग, उपांग एवं अंगोपांग होते हैं ॥३४॥

उरलाइ-पुग्गलाणं, निबद्ध-बज्झंतयाण संबंधं, ।
जं कुणइ जउसमं तं, बंधण-मुरलाइतणुनामा ॥ ३५ ॥

पूर्व में बंधे हुए और नये बंध रहे औदारिक आदि वर्गणा के पुद्गलों में परस्पर संयोग / संबंध स्थापित करने वाले कर्म को औदारिक आदि बंधन नाम कर्म कहते हैं । औदारिक आदि पांच शरीर के नाम वाले पांच प्रकार के बंधन नाम कर्म लाख के समान कहे गए हैं ॥३५॥

जं संघायइ, उरलाइ - पुग्गलेतिणगणं व दंताली, ।
तं संघायं बंधणमिव - तणुनामेण पंचविहं ॥ ३६ ॥

जिस प्रकार दंताली बिखरे हुए तृण (घास) को एकत्र करती हैं, उसी प्रकार औदारिक आदि पुद्गलों को एकत्र करके प्रदान करने वाला संघातन नाम कर्म हैं । इसके भी बंधन नाम कर्म की भाँति औदारिक आदि के नाम से पाँच प्रकार होते हैं ॥३६॥

ओरालविउव्वाहारयाण-सग-तेअ-कम्मजुत्ताणं, ।
नव बंधणाणि इअर दु, सहियाणं तिन्नि तेसिं च ॥ ३७ ॥

स्वयं के साथ, तैजस बंधन नामकर्म और कार्मण बंधन नामकर्म के साथ औदारिक, वैक्रिय और आहारक बंधन नामकर्म का योग करने पर कुल नौ प्रकार के बंधन नामकर्म होते हैं । उन्हीं औदारिक आदि तीन बंधनों को तैजस एवं कार्मण के साथ जोड़ने से अन्य तीन बंधन नाम कर्म होते हैं तथा तैजस एवं कार्मण के भी तीन भेद मिलाने से कुल पन्द्रह बंधन नाम कर्म होते हैं ॥३७॥

संघयणमट्ठिनिचओ, तं छद्धा वज्जरिसहनारायं, ।
तह रिसहनारायं, नारायं अद्धनारायं ॥ ३८ ॥

अस्थि-रचना की मजबूती और शिथिलता को संघयण कहते हैं ।

संघयण छह प्रकार के हैं - (१) वज्रऋषभनाराच संघयण (२) ऋषभनाराच संघयण (३) नाराच संघयण (४) अर्द्धनाराच संघयण (५) कीलिका संघयण (६) सेवार्त संघयण ॥३८॥

कीलिय छेवट्ठं ईह, रिसहो पट्टो अ कीलिआ वज्जं, ।
उभओ मक्कडबंधो - नारायं ईममुरालंगे ॥ ३९ ॥

ऋषभ का अर्थ है - पाटा । वज्र का अर्थ है । कीलिका । दोनों तरफ के मर्कट-बंध को नाराच कहते हैं । ये छह संघयण औदारिक शरीर में ही होते हैं ॥३९॥

समचउरंसं निग्गोह - साइ खुज्जाइ वामणं हुंडं, ।
संठाणा वण्णा किण्ह, नील-लोहिअ-हलिद्द-सिआ ॥४०॥

संस्थान नाम कर्म छह प्रकार के कहे गए हैं-

(१) समचतुरस्र (२) न्यग्रोध परिमण्डल (३) सादि (४) वामन (५) कुब्ज (६) हुण्डक ॥४०॥

वर्ण नाम कर्म के पाँच प्रकार हैं- (१) काला (२) नीला (३) लाल (४) पीला और (५) श्वेत ॥४०॥

सुरहिदुरही रसा पण, तित्त-कडु-कसाय-अंबिला-महुरा, ।
फासा गुरुलहु-मिउखर-सीउण्ह-सिणिद्धरुक्खट्ठा ॥४१॥

गंध नाम कर्म दो प्रकार के हैं - (१) सुरभि (२) दुरभि ।

रस नामकर्म पाँच प्रकार के हैं - (१) तिक्त (२) कटु (३) कषाय (४) खट्टा-खारा (५) मधुर ।

स्पर्श नामकर्म आठ प्रकार के हैं- (१) गुरु (२) लघु (३) मृदु (४) कर्कश (५) शीत (६) उष्ण (७) स्निग्ध (८) रुक्ष ॥४१॥

नील-कसिणं दुगंधं, तित्तं कडुअं गुरुं खरं रुक्खं, ।
सीअं च असुहनवगं, इक्कारसगं सुभं सेसं ॥ ४२ ॥

वर्ण-गंध-रस-स्पर्श नाम कर्म की बीस प्रकृतियों में से नौ प्रकृतियाँ अशुभ हैं- (१) नील वर्ण (२) कृष्ण वर्ण (३) दुर्गंध (४) तिक्त रस (५) कटुक रस (६) गुरु स्पर्श (७) कर्कश स्पर्श (८) रुक्ष स्पर्श (९) शीत स्पर्श । शेष ग्यारह प्रकृतियाँ शुभ कही गयी हैं ॥४२॥

चउहगइव्व-णुपुव्वी, गइपुव्विदुगं तिगं नियाउजुअं, ।
पुव्वीउदओ वक्के, सुहअसुहवसुट्टविहगगई ॥ ४३ ॥

गति नामकर्म की भाँति **आनुपूर्वी** नामकर्म भी चार प्रकार के हैं - (१) नरकानुपूर्वी (२) तिर्यंचानुपूर्वी (३) मनुष्यानुपूर्वी (४) देवानुपूर्वी । गति और आनुपूर्वी द्विक कहलाती हैं । उसमें स्वयं का आयुष्य जोड़ने पर त्रिक कहा जाता है । आनुपूर्वी का उदय वक्र गति में होता है ।

दो प्रकार की विहायोगति कही गयी है-शुभ विहायोगति एवं अशुभ विहायोगति । शुभ विहायोगति वृषभ की चाल की भाँति और अशुभ विहायोगति ऊँट की चाल की भाँति कही गयी है ॥४३॥

परघा-उदया पाणी, परेसिं बलिणंपि होइ दुद्धरिसो, ।
ऊससण-लद्धिजुत्तो, हवेइ ऊसासनाम-वसा ॥ ४४ ॥

पराघात नामकर्म के उदय से निर्बल प्राणी को अन्य बलवान प्राणी भी मुश्किल से जीत पाते हैं। उच्छ्वास नाम कर्म के उदय से जीव उच्छ्वास लब्धि से संपन्न होता है ॥४४॥

रविबिंबे उ जीअंगं, तावजुअं आयवाउ न उ जलणे, ।
जमुसिणफासस्स तहिं, लोहिअवण्णस्स उदउत्ति ॥ ४५ ॥

सूर्य बिंब (विमान) में स्थित जीवों (पृथ्वीकायमय रतन) का शरीर तापयुक्त प्रकाश देता है, वह आतप नाम कर्म का उदय है।

अग्निकायिक जीवों में इस कर्म का उदय नहीं होता है। उनमें उष्ण स्पर्श और रक्त वर्ण नामकर्म का उदय होता है ॥४५॥

अणुसिणपयासरूवं, जिअंगमुज्जोअए इहुज्जोआ, ।
जइ-देवुत्तरविक्किअ, जोइस-खज्जोअमाइव्व ॥ ४६ ॥

साधु का वैक्रिय शरीर, देवों का उत्तर वैक्रिय शरीर, चन्द्रादि ज्योतिष्क देव, खद्योत आदि की तरह जिन जीवों का शीत शरीर अनुष्ण प्रकाश करता है, उसमें कारणरूप उद्योत नाम कर्म का उदय है ॥४६॥

अंगं न गुरु न लहुअं, जायइ जीवस्स अगुरुलहुउदया, ।
तित्थेण तिहुअणस्सवि, पुज्जो से उदओ केवलिणो ॥४७॥

अगुरुलघु नामकर्म के उदय से समस्त जीवों को अपना शरीर न भारी लगता है, न हल्का लगता है ।

तीर्थंकर नामकर्म के उदय से जीव त्रिभुवन में पूजनीय बनता है, जिसका उदय केवलज्ञानी (?) भगवंतों को होता है ॥४७॥

अंगोवंग-निअमणं, निम्माणं कुणइ सुत्तहारसमं, ।
उवघाया उवहम्मइ, सतणुवयव-लंबिगाईहिं ॥ ४८ ॥

सूत्रधार(सुथार) के समान अंगोपांग की उचित स्थान पर व्यवस्थित रूप से संयोजना करने वाले कर्म को निर्माण नामकर्म कहते है ।

उपघात नामकर्म के उदय से जीव स्वयं के शारीरिक अवयवों (**पडजीभी** आदि) के द्वारा दुःखी होता है ॥४८॥

बितिचउपणिंदिअ तसा, बायरओ बायरा जिआ थूला, ।
निअनिअपज्जत्तिजुआ, पज्जत्ता लद्धि-करणेहिं ॥ ४९ ॥

जिस कर्म के कारण जीव धूप-छाँव, सुख-दुःख आदि के कारण गमनागमन करता है, उसे त्रस नामकर्म कहते हैं ।

त्रस नामकर्म का उदय द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों को होता है ।

बादर नामकर्म के उदय से जीव बादर (स्थूल) पर्याय प्राप्त करता है ।

पर्याप्त नामकर्म के उदय से जीव अपनी-अपनी पर्याप्तियाँ परिपूर्ण करते हैं। पर्याप्त नामकर्म दो प्रकार का हैं- (१) करण पर्याप्ता नामकर्म (२) लब्धि पर्याप्ता नाम कर्म ॥४९॥

पत्तेअतणू पत्ते-उदएणं दंतअट्ठिमाइ थिरं, ।
नाभुवरि सिराइ सुहं, सुभगाओ सव्वजणइट्ठो ॥ ५० ॥

प्रत्येक नामकर्म के उदय से जीव अलग-अलग(प्रत्येक) शरीर प्राप्त करता है। स्थिर नामकर्म के उदय से अस्थि, दांत आदि स्थिर प्राप्त होते हैं। शुभ नाम कर्म के उदय से नाभि ऊपर के शुभ अवयव प्राप्त होते हैं। सौभाग्य नामकर्म के उदय से जीव सभी व्यक्तियों(जीवों) को इष्ट/प्यारा लगता है ॥५०॥

सुसरा महुरसुहझुणी, आइज्जा सव्वलोय-गिज्झवओ, ।
जसओ जस-कित्तीओ, थावरदसगं विवज्जत्थं ॥ ५१ ॥

सुस्वर नामकर्म के उदय से मधुर एवं सुखकारी वाणी प्राप्त होती है। आदेय नामकर्म के उदय से सभी लोग उसके वचन को ग्रहण (**सम्मान**) करते हैं। यश नाम कर्म के उदय से यश और कीर्ति प्राप्त होती हैं। इस त्रस दशक से विपरीत अर्थ वाला स्थावर दशक जानना चाहिये ॥५१॥

गोअं दुहुच्चनीअं, कुलाल इव सुघडभुंभलाइअं, ।
विग्घं दाणे लाभे, भोगुवभोगेसु विरिए अ ॥ ५२ ॥

जिस प्रकार कुम्हार दो प्रकार के घड़े बनाता है। एक प्रकार के घड़े में मदिरा आदि भरी जाने से वह अशुभ होता है और दूसरे प्रकार के घड़े में दूध आदि भरे जाने से वह शुभ होता है। उसी प्रकार गोत्रकर्म भी दो प्रकार के होते हैं- (१) उच्च गोत्रकर्म (२) नीच गोत्रकर्म।

अन्तराय कर्म पाँच प्रकार के हैं-

(१) दानान्तराय (२) लाभान्तराय (३) भोगान्तराय (४) उपभोगान्तराय (५) वीर्यान्तराय ॥५२॥

सिरिहरिअ-समं एअं, जह पडिकूलेण तेण रायाई, ।
न कुणइ दाणाइअं, एवं विग्घेण जीवो वि ॥ ५३ ॥

अन्तरायकर्म राजभण्डारी के समान है। जिस प्रकार भण्डारी की प्रतिकूलता के कारण राजा दान नहीं कर पाता है, ठीक उसी प्रकार अन्तराय कर्म के उदय से जीव भी दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में प्रवृत्ति नहीं कर पाता है ॥५३॥

पडिणीअत्तण-निण्हव, उवघाय-पओस-अंतराएणं, ।
अच्चासायणयाए, आवरणदुगं जिओ जयइ ॥ ५४ ॥

ज्ञान, ज्ञानी एवं ज्ञान-प्राप्ति के साधनों के प्रति अनिष्ट आचरण करने से, अपलाप करने से, हनन करने से, द्वेष करने से एवं अतिशय आशातना करने से ज्ञानावरणीय कर्म बंधता है। दर्शन, दर्शनी, दर्शन के साधनों के प्रति उपरोक्त कारणों से दर्शनावरणीय कर्म बंधता है ॥५४॥

गुरु-भत्ति-खंति-करुणा, ।
वय-जोग-कसाय-विजय-दाण जुओ, ।
दढधम्माइ अज्जइ, सायमसायं विवज्जयओ ॥ ५५ ॥

गुरू-भक्ति, क्षमा, करुणा, व्रतपालन, योगों की शुभ प्रवृत्ति, कषाय-विजय, दान और धर्म कार्य में दृढ़ता आदि शाता वेदनीय कर्म बंध के हेतु हैं। इसके विपरीत आचरण से अशाता वेदनीय कर्म का बंध होता है ॥५५॥

उम्मग्गदेसणा-मग्ग-नासणा-देवदव्वहरणेहिं, ।
दंसणमोहं जिणमुणि-चेइअ-संघाई-पडिणीओ ॥ ५६ ॥

उन्मार्ग की देशना (प्ररूपणा) करने से, सन्मार्ग का नाश करने से, देवद्रव्य का हरण करने से तथा जिनेश्वर परमात्मा, मुनि, जिनप्रतिमा और चतुर्विध संघ आदि का विरोधी/शत्रु होने से (जीव) दर्शन मोहनीय कर्म का बंध करता है ॥ ५६ ॥

दुविहंपि चरणमोहं, कसायहासाइ-विसय-विवसमणो, ।
बंधइ निरयाउ महा-रंभपरिग्गहो-रओ रुद्दो ॥ ५७ ॥

कषाय (क्रोध-मान-माया-लोभ) और हास्यादि (रति आदि नौ नोकषाय) विषयों के वश बना मूढ़ मन वाला जीव दोनों प्रकार के चारित्र मोहनीय कर्म का बंध करता है। महारंभ, महापरिग्रह में अनुरक्त और रौद्र परिणाम वाला जीव नरक आयुष्य का बंध करता है ॥ ५७ ॥

तिरिआउ गूढहिअओ, सढो ससल्लो तहा मणुस्साऊ, ।
पयईइ तणुकसाओ, दाणरुई मज्झिम गुणो अ ॥ ५८ ॥

गूढ़ हृदय वाला, शठ एवं सशल्य जीव तिर्यंच आयुष्य का बंध करता है। पतले (अल्प) कषाय वाला, दान की रुचि से युक्त और मध्यम गुणों वाला जीव मनुष्य आयुष्य का बंध करता है ॥ ५८ ॥

अविरयमाई सुराउं, बालतवोऽकामनिज्जरो जयई, ।
सरलो अगारविल्लो, सुहनामं अन्नहा असुहं ॥ ५९ ॥

अविरत (सम्यग्दृष्टि), अज्ञान तपस्वी एवं अकाम निर्जरा करने वाला देव आयुष्य का बंध करता है। सरल स्वभावी और अनासक्त जीव शुभ नामकर्म का बंध करता है और उसके विपरीत आचरण करने वाला अशुभ नामकर्म का बंध करता है ॥ ५९ ॥

गुणपेही मयरहिओ, अज्झयणज्झावणारुई निच्चं, ।
पकुणइ जिणाइभत्तो, उच्चं नीअं ईअरहा उ ॥ ६० ॥

गुणानुरागी, मदरहित, अध्ययन-अध्यापन की रुचि वाला, जिनेश्वर आदि का भक्त हमेशा उच्च गोत्र का ही बंध करता है । इसके विपरीत आचरण करने वाला नीच गोत्र का बंध करता है ॥ ६० ॥

जिणपूआ-विग्घकरो, हिंसाइ-परायणो जयइ विग्घं, ।
इअ कम्मविवागोऽयं, लिहिओ देविंदसूरीहिं ॥ ६१ ॥

जिनेश्वर परमात्मा की पूजा में अन्तराय/विघ्न करने वाला, हिंसा आदि कार्यों में परायण/रत जीव अन्तराय कर्म का बंध करता है । इस प्रकार कर्मविपाक नामक प्रथम कर्मग्रंथ श्री देवेन्द्रसूरिजी म. सा. द्वारा लिखा गया है ॥ ६१ ॥

• • •

कर्मस्तव - द्वितीय कर्मग्रंथ

तह थुणिमो वीरजिणं, जह गुणठाणेसु, सयलकम्माइं; ।
बंधुदओदीरणया-सत्तापत्ताणि खविआणि ॥ १ ॥

भावार्थ : जिस प्रकार वीर प्रभु ने गुणस्थानकों में बंध उदय, उदीरणा और सत्ता को प्राप्त कर सभी कर्मों को नष्ट किया है, उस प्रकार से हम वीर प्रभु की स्तुति करते हैं ॥१॥

मिच्छे सासण मीसे, अविरय देसे पमत्त अपमत्ते; ।
निअट्टि अनिअट्टि, सुहुमुवसम खीणसजोगिअजोगिगुणा ॥ २ ॥

भावार्थ : १. मिथ्यादृष्टि २. सास्वादन ३. मिश्र ४. अविरत सम्यग्दृष्टि ५. देशविरति ६. प्रमत्तसंयत ७. अप्रमत्तसंयत ८. अपूर्वकरण ९. अनिवृत्तिकरण १०. सूक्ष्म संपराय ११. उपशांतमोह १२. क्षीणमोह १३. सयोगी केवली १४. अयोगी केवली ॥२॥

अभिनवकम्मग्गहणं, बंधो ओहेण तत्थ वीससयं; ।
तित्थयराहारगदुग-वज्जं मिच्छंमि सतरसयं ॥ ३ ॥

भावार्थ : नए कर्मों को ग्रहण करना, उसे बंध कहते हैं । सामान्य से अर्थात् किसी जीवस्थान गुणस्थानक की विवक्षा किए बिना बंध योग्य 120 कर्म प्रकृतियाँ हैं ॥३॥

नरयतिग जाइथावर-चउ हुंडायव-छिवट्ठ-नपु मिच्छं; ।
सोलंतो इगहिअसय, सासणि तिरिथीणदुहगतिगं ॥ ४ ॥

भावार्थ : नरकत्रिक, जातिचतुष्क, स्थावरचतुष्क, हुंडक संस्थान, आतप, सेवार्त संघयण, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व मोहनीय इन 16 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होने से सास्वादन गुणस्थानक में 101 प्रकृतियों का बंध होता है ॥४॥

अणमज्झागिइसंघयण-चउनिउज्जोअ-कुखगइत्थित्ति; ।
पणवीसंतो मीसे, चउसयरि दुआउअअ-अबंधा ॥ ५ ॥

भावार्थ : तिर्यंच त्रिक, थीणद्धि त्रिक, दौर्भाग्य त्रिक, अनंतानुबंधी चतुष्क, मध्य संघयण और मध्य संस्थान, नीच गोत्र, उद्योत, अशुभविहायोगति और स्त्रीवेद इन 25 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होने से मिश्र गुणस्थानक में 74 कर्म-प्रकृतियों का बंध होता है, वहाँ दो आयुष्य का अबंध है ॥५॥

सम्मे सगसयरि जिणाउ-बंधि वइरनरतिअबिअकसाया; ।
उरलदुगंतो देसे, सत्तट्ठी तिअकसायंतो ॥ ६ ॥

भावार्थ : अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में तीर्थंकर नामकर्म और दो आयुष्य का बंध होने से 77 प्रकृतियों का बंध हो सकता है ।

वज्रऋषभ नाराच, मनुष्यत्रिक अप्रत्याख्यानावरण कषाय तथा औदारिक द्विक का अंत होने से देशविरति गुणस्थानक में 67 कर्मप्रकृति का बंध होता है ॥।६॥

तेवट्ठि पमत्ते सोग, अरइ अथिरदुग अजस अस्सायं; ।
वुच्छिज्ज छच्च सत्त व, नेइ सुराउं जया निट्ठं ॥ ७ ॥

भावार्थ : पाँचवें गुणस्थानक के अंत में प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का बंध विच्छेद होने से छठे प्रमत्त संयत गुणस्थानक में 63 प्रकृतियाँ बंध योग्य हैं ।

छठे गुणस्थानक के अंत में शोक, अरति, अस्थिर द्विक, अपयश और अशाता वेदनीय इन छः प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है अथवा देव आयुष्य के बंध का विच्छेद करे तो सात कर्म प्रकृति का बंधविच्छेद होता है ॥७॥

गुणसट्ठि अप्पमत्ते, सुराउं बंधंतु जइ इहागच्छे; ।
अन्नह अट्ठावन्ना जं आहारगदुगं बंधे ॥ ८ ॥

भावार्थ : यदि देव आयुष्य का बंध करते हुए कोई जीव अप्रमत्त गुणस्थानक को प्राप्त करता है तो 59 प्रकृतियों का बंध होता है, अन्यथा 58 प्रकृतियों का बंध होता है, क्योंकि यहाँ आहारक द्विक का बंध होता है ॥८॥

अडवन्न अपुव्वाइम्मि, निद्दुगंतो छप्पन्न पण भागे; ।
सुरदुग-पणिंदि-सुखगइ, तसनव उरलविणु तणुवंगा ॥९॥

भावार्थ : अपूर्वकरण गुणस्थानक के पहले भाग में 58 प्रकृतियों का बंध होता है। वहाँ निद्राद्विक का अंत होता है। अर्थात् दूसरे से छठे भाग तक के 5 भाग में 56 प्रकृतियों का बंध होता है ॥९॥

समचउरनिमिणजिणवन्न-अगुरुलहुचउछलंसि तीसंतो; ।
चरमे छवीसबंधो, हास-रई-कुच्छ-भय-भेओ ॥ १० ॥

भावार्थ : छठे भाग के अंत में सुरद्धिक, पंचेन्द्रिय जाति, शुभ विहायोगति, त्रस आदि 9, औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग सिवाय के शरीर और अंगोपांग, समचतुस्त्र संस्थान, निर्माण, जिननाम, वर्ण आदि चतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क इन 30 प्रकृतियों का बंध विच्छेद होता है अर्थात् अंतिम भाग में 26 कर्मप्रकृतियों का बंध होता है, वहाँ हास्य, रति, जुगुप्सा और भय के बंध का विच्छेद होता है ॥१०॥

अनिअट्टि-भागपणगे, इगेगहीणो दुवीसविहबंधो; ।
पुम संजलण-चउण्हं, कमेण छेओ सतर सुहुमे ॥ ११ ॥

भावार्थ : अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक के 5 भाग करें (1) उसके पहले भाग में 22 प्रकृति का बंध होता है, फिर पुरुषवेद और संज्वलन चतुष्क इन पाँच में से एक-एक का

क्रमशः बंध-विच्छेद होता है अर्थात् सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में 17 प्रकृति का बंध होता है ॥११॥

चउदंसणुच्चजसनाण, विग्घदसगंति सोलसुच्छेओ; ।
तिसु सायबंध छेओ, सजोगि बंधंतुऽणंतो अ ॥ १२ ॥

भावार्थ : दर्शनावरणीय की 4, उच्च गोत्र, यश, ज्ञानावरणीय की 5 और अंतराय की 5, इन सोलह प्रकृतियों का 10वें गुणस्थानक के अंत में बंधविच्छेद होता है । अर्थात् 11-12 व 13वें गुणस्थानक में सिर्फ शातावेदनीय का ही बंध होता है ॥१२॥

उदओ विवागवेअण-मुदीरणमपत्ति ईह दुवीससयं; ।
सतरसयं मिच्छे मीस-सम्म-आहार-जिणणुदया ॥१३॥

भावार्थ : कर्म के फल का अनुभव करना, उसे उदय कहते हैं । उदय काल को प्राप्त नहीं हुए कर्मदलिकों को प्रयत्नपूर्वक उदय में लाना, उसे उदीरणा कहते हैं ।

उदय और उदीरणा में कुल 122 प्रकृतियाँ हैं । मिथ्यात्व गुणस्थानक में मिश्रमोहनीय, समकित मोहनीय, आहारक द्विक और जिननामकर्म- इन 5 प्रकृतियों का उदय नहीं होने से 117 प्रकृतियों का ही उदय होता है ॥१३॥

सुहुमतिगायव मिच्छं, मिच्छं तं सासणे इगारसयं; ।
निरयाणुपुव्वि-णुदया, अणथावर-इगविगलअंतो ॥१४॥

भावार्थ : मिथ्यात्व गुणस्थानक के अंत में सूक्ष्मत्रिक, आतप और मिथ्यात्व मोहनीय का उच्छेद होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक में नरकानुपूर्वी का अनुदय होने से 111 प्रकृति का उदय होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक के अंत में अनंतानुबंधी चतुष्क, स्थावर, एकेन्द्रिय जाति और विकलेन्द्रिय जाति के उदय का विच्छेद होता है ॥१४॥

मीसे सयमणुपुव्वी-ऽणुदया मीसोदएण मीसंतो; ।
चउसयमजए सम्मा-ऽणुपुव्विखेवा बिअकसाया ॥१५॥

भावार्थ : आनुपूर्वी का अनुदय तथा मिश्र मोहनीय का उदय होने से मिश्र गुणस्थानक में उदय में 100 कर्मप्रकृतियाँ होती हैं । वहाँ मिश्र मोहनीय के उदय का उच्छेद होता है ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय और आनुपूर्वी चतुष्क को जोड़ने से 104 प्रकृति का उदय होता है ॥१५॥

मणुतिरिणुपुव्वि विउवट्ठ-दुहगअणाइज्जदुगसतरछेओ; ।
सगसीइ देसि तिरिगइ - आउ निउज्जोअतिकसाया ॥१६॥

भावार्थ : चौथे गुणस्थानक के अंत में अप्रत्याख्यानीय कषाय, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, वैक्रिय अष्टक, दौर्भाग्य अनादेय द्विक, इन 7 कर्मप्रकृति का विच्छेद होता है ।

देशविरति गुणस्थानक में 87 कर्मप्रकृतियाँ उदय में होती है। देशविरति के अंत में तिर्यंच गति, तिर्यंच आयुष्य, नीच गोत्र, उद्योत नाम कर्म तथा तीसरे प्रत्याख्यानीय कषाय के उदय का विच्छेद होता है ॥१६॥

अट्ठच्छेओ इगसी, पमत्ति आहारजुअल-पक्खेवा; ।
थीणतिगाहारगदुअ - छेओ छस्सयरि अपमत्ते ॥ १७ ॥

भावार्थ : आठ कर्मप्रकृति का उदय विच्छेद होने से और आहारक द्विक को जोड़ने से प्रमत्त गुणस्थानक में 81 प्रकृतियों का उदय होता है। वहाँ थीणद्धि त्रिक और आहारक द्विक का उदय विच्छेद होने से अप्रमत्त गुणस्थानक में 76 कर्मप्रकृतियों का उदय होता है ॥१७॥

सम्मत्तंतिमसंघयण - तियच्छेओ बिसत्तरि अपुव्वे; ।
हासाइछक्क-अंतो, छसट्ठि अनिअट्टि वेअतिगं ॥ १८ ॥

भावार्थ : अप्रमत्त गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय और अंतिम तीन संघयण के उदय का विच्छेद होता है। अतः अपूर्वकरण गुणस्थानक में 72 कर्मप्रकृतियों का उदय होता है ॥१८॥

संजलणतिगं छ-छेओ, सट्ठि सुहुमंमि तुरिअलोभंतो; ।
उवसंतगुणे गुणसट्ठि-रिसहनारायदुगअंतो ॥ १९ ॥

भावार्थ : वहाँ हास्यादि छह का विच्छेद होने से अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में 66 कर्मप्रकृतियों का उदय होता है। वहाँ वेदत्रिक और संज्वलन त्रिक के उदय का विच्छेद होता है, अतः सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में 60 प्रकृति का उदय होता है, वहाँ चौथे संज्वलन लोभ के उदय का विच्छेद होता है अतः उपशांत मोह गुणस्थानक में 59 प्रकृति का उदय रहता है। वहाँ ऋषभनाराच और नाराच इन दो संघयणों के उदय का विच्छेद होता है ॥१९॥

सगवन्न खीणदुचरिमि, निद्ददुगंतो अ चरिमि पणवन्ना; ।
नाणंतरायदंसण, चउ छेओ सजोगि बायाला ॥ २० ॥

भावार्थ : क्षीणमोह गुणस्थानक के द्विचरम समय में 57 प्रकृतियों का उदय होता है। निद्रा द्विक का अंत होने पर क्षीणमोह के अंतिम समय में 55 प्रकृतियों का उदय होता है। वहाँ ज्ञानावरणीय व अंतराय की 10 और दर्शनावरणीय की 5 प्रकृतियों के उदय का विच्छेद होता है, तथा तीर्थंकर नामकर्म का उदय होता है, अतः सयोगी गुणस्थानक में 42 प्रकृतियों का उदय होता है ॥२०॥

तित्थुदया उरला-थिर, -खगइदुग परित्ततिग छ संठाणा; ।
अगुरुलहु-वन्नचउनिमिण-तेअकम्माई संघयणं ॥ २१ ॥

भावार्थ : सयोगी गुणस्थानक में तीर्थंकर नामकर्म का उदय होने से 42 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । सयोगी के अंत में औदारिक द्विक, अस्थिर द्विक, विहायोगति द्विक, प्रत्येक त्रिक, 6 संस्थान, अगुरुलघुचतुष्क, वर्णचतुष्क, निर्माण, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रथम संघयण, दुःस्वर, सुस्वर शाता-अशाता में से कोई एक वेदनीय । इस प्रकार 30 प्रकृतियों का उदय विच्छेद होता है ॥२१॥

दूसर सूसर साया, -साएगयरं च तीसवुच्छेओ; ।
बारस अजोगि सुभगाइज्ज-जसन्नयरवेअणिअं ॥ २२ ॥

भावार्थ : अयोगी गुणस्थानक में 12 प्रकृतियों का उदय होता है । वहाँ सौभाग्य, आदेय, यश, शाता-अशाता में से एक वेदनीय, त्रस त्रिक, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्य आयुष्य, मनुष्यगति, जिननाम तथा उच्चगोत्र इन 12 प्रकृतियों का अयोगी गुणस्थानक के अंतिम समय में उदय विच्छेद होता है ॥२२॥

तसतिगपणिंदिमणुआउ- गइजिणुच्चंतिचरिमसमयंतो; ।
उदउव्वुदीरणा परमपमत्ताई-सगगुणेसु ॥ २३ ॥

भावार्थ : उदय की तरह उदीरणा समझनी चाहिए, परंतु अप्रमत्त आदि सात गुणस्थानकों में उदीरणा, तीन प्रकृतियों से न्यून समझनी चाहिए ॥२३॥

एसा पयडितिगूणा, वेयणियाहारजुअल-थीणतिगं; ।
मणुआउ पमत्तंता, अजोगि अणुदीरगो भयवं ॥ २४ ॥

भावार्थ : प्रमत्त गुणस्थानक के अंत में दो वेदनीय, आहारक द्विक, थीणद्धि त्रिक और मनुष्य आयुष्य इन आठ प्रकृतियों की उदीरणा का विच्छेद होता है । अयोगी भगवंत उदीरणा रहित होते हैं ॥२४॥

सत्ता कम्माण ठिई, बंधाईलद्ध-अत्तलाभाणं; ।
संते अडयालसयं, जा उवसमु विजिणु बिअतइए ॥२५॥

भावार्थ : बंध आदि के द्वारा स्व स्वरूप को जिन्होंने प्राप्त किया है ऐसे कर्मों का आत्मा के साथ रहना, उसे सत्ता कहते हैं । उपशांत मोह गुणस्थानक तक सत्ता में 148 कर्मप्रकृतियाँ होती हैं । दूसरे-तीसरे गुणस्थानक में जिननाम की सत्ता नहीं होती है ॥२५॥

अप्पुव्वाइचउक्के, अणतिरिनिरयाउ विणु बियालसयं; ।
सम्माईचउसु सत्तग-खयंमि इगचत्तसयमहवा ॥ २६ ॥

भावार्थ : अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानकों में अनंतानुबंधी चतुष्क, तिर्यंचआयु व नरकआयु को छोड़कर 148 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं, और अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानकों में दर्शनसप्तक का क्षय होने से 141 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं ॥२६॥

खवगं तु पप्प चउसुवि, पणयालं निरयतिरिसुराउ विणा; ।
सत्तगविणु अडतीसं, जा अनिअट्टि–पढमभागो ॥ २७ ॥

भावार्थ : क्षपक की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानकों में नरकआयु, तिर्यंचआयु और देवायु को छोड़कर 145 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं । अनिवृत्ति गुणस्थानक के पहले समय में सप्तक के बिना 138 प्रकृतियाँ होती हैं ॥२७॥

थावरतिरिनिरयायव–दुग थीणतिगेग विगल साहारं; ।
सोलखओ दुवीससयं, बिअंसि बिअतिअकसायंतो ॥२८॥

भावार्थ : स्थावरद्विक, तिर्यंचद्विक नरकद्विक, आतपद्विक, थीणद्धित्रिक, एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रिय जाति और साधारण, इन 16 प्रकृतियों का क्षय होने से दूसरे भाग में सत्ता में 122 कर्मप्रकृतियाँ रहती है । दूसरे और तीसरे कषाय का अंत होने से तीसरे भाग में सत्ता में 114 कर्मप्रकृतियाँ रहती हैं ।

नपुंसक वेद का क्षय होने से चौथे भाग में 113 कर्म प्रकृतियों की सत्ता रहती है ॥२८॥

तइआइसु चउदसतेर बारछपण–चउतिहियसय कमसो; ।
नपुइत्थिहासछगपुंस – तुरिअकोह मय–माय–खओ ॥२९॥

भावार्थ : स्त्रीवेद का अंत होने से पाँचवें भाग में 112 प्रकृतियों की सत्ता रहती है ।

हास्यषट्क का अंत होने से छठे भाग में 106 प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं ।

पुरुषवेद का क्षय होने से सातवें भाग में 105 प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं ।

संज्वलन क्रोध का क्षय होने से आठवें भाग में 104 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

संज्वलन मान का क्षय होने से नौवें भाग में 103 प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं ।

फिर संज्वलन माया का क्षय होता है ॥२९॥

सुहुमि दुसय लोहंतो, खीणदुचरिमेगसयं दुनिद्दखओ; ।
नवनवई चरिमसमए, चउदंसण-नाणविग्घंतो ॥ ३० ॥

भावार्थ : सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में सत्ता में 102 प्रकृतियाँ होती हैं । वहाँ संज्वलन लोभ का अंत होने से क्षीणमोह गुणस्थानक के द्विचरम समय में 101 प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं ।

वहाँ निद्रा द्विक का क्षय होने से क्षीणमोह के अंतिम समय में 99 प्रकृतियाँ सत्ता में रहती है ॥३०॥

पणसीइ सजोगि अजोगि-दुचरिमे देवखगईगंधदुगं; ।
फासट्ठ वन्नरसतणु-बंधणसंघायपण निमिणं ॥ ३१ ॥
संघयणअथिरसंठाण-छक्क अगुरुलहुचउ अपज्जत्तं; ।
सायं व असायं वा, परित्तुवंगतिग सुसर निअं ॥ ३२ ॥

भावार्थ : सयोगी गुणस्थानक में सत्ता में 85 प्रकृतियाँ रहती हैं । अयोगी गुणस्थानक के द्विचरम समय में देव द्विक, विहायोगति द्विक, गंध द्विक, आठ स्पर्श, पाँच वर्ण, पाँच रस, पाँच शरीर, पाँच बंधन, पाँच संघातन, निर्माण, छः संघयण, अस्थिर षट्क, छः संस्थान, अगुरुलघु चतुष्क, अपर्याप्त, शाता अथवा अशाता, प्रत्येक त्रिक, उपांग त्रिक, सुस्वर और नीच गोत्र इन 72 प्रकृतियों का क्षय होता है ॥३१॥-॥३२॥

बिसयरिखओ अ चरिमे, तेरसमणुअतसतिगजसाइज्जं; ।
सुभग-जिणुच्च-पणिंदिअ-सायासाएगयर-छेओ ॥३३॥
नरअणुपुव्विविणा वा, बारस चरिमसमयंमि जो खविउं; ।
पत्तो सिद्धिं देविंद-वंदिअं नमह तं वीरं ॥ ३४ ॥

भावार्थ : अयोगी गुणस्थानक के द्विचरम समय में 72 प्रकृतियों का क्षय होता है और अंतिम समय में मनुष्यत्रिक, त्रसत्रिक, यश, आदेय, सुभग, जिन-नाम, उच्च

गोत्र, पंचेन्द्रिय, शाता-अशाता में से एक वेदनीय इन तेरह प्रकृतियों का क्षय होता है ॥३३॥

अथवा मनुष्यानुपूर्वी बिना 12 कर्मप्रकृतियों का अयोगी गुणस्थानक के अंतिम समय में क्षय कर मोक्ष प्राप्त करनेवाले एवं देवेन्द्रों से वंदित महावीर प्रभु को नमस्कार है ॥३४॥

• • •

बंध स्वामित्व - तृतीय कर्मग्रंथ

बंधविहाण-विमुक्कं, वंदिय सिरिवद्धमाण-जिणचंदं; ।
गइ-आइसुं वुच्छं, समासओ बंधसामित्तं ॥ १ ॥

भावार्थ : कर्मबंध के सभी प्रकारों से बंधनमुक्त बने जिनेश्वरों में चंद्र समान महावीर प्रभु को वंदन करके गति आदि 62 मार्गणाओं में बंध का स्वामित्व कहूँगा ॥१॥

गइ इंदिए य काए, जोए वेए कसाय नाणे य; ।
संजम दंसण लेसा भव सम्मे सन्नि आहारे ॥ २ ॥

भावार्थ : चौदह मूल मार्गणाएँ हैं- (१) गति (२) इन्द्रिय (३) काय (४) योग (५) वेद (६) कषाय (७) ज्ञान (८) संयम (९) दर्शन (१०) लेश्या (११) भव्य (१२) सम्यक्त्व (१३) संज्ञी और (१४) आहारी ॥२॥

जिण सुरविउवाहारदु, देवाउ य निरय सुहुम विगलतिगं; ।
एगिंदि थावरायव-नपु मिच्छं हुंड छेवट्ठं ॥ ३ ॥

अणमज्झागिइसंघयण - कुखगइनियइत्थिदुहगथीणतिगं; ।
उज्जोअ तिरिदुगं तिरि, -नराउ नरउरलदुग-रिसहं ॥ ४ ॥

भावार्थ : जिननाम, सुरद्विक, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक देवायु नरकत्रिक, सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, एकेन्द्रिय, स्थावरनाम, आतपनाम, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, सेवार्त संघयण, अनंतानुबंधी चतुष्क, मध्यम संस्थान चतुष्क, मध्यम संघयण चतुष्क, अशुभ विहायोगति, नीच गोत्र, स्त्री वेद, दुर्भगत्रिक, स्त्यानर्द्धित्रिक, उद्योत, तिर्यंचद्विक, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, मनुष्यद्विक औदारिकद्विक और वज्रऋषभनाराच संघयण ये 55 प्रकृतियाँ, बंधस्वामित्व बताने में सहायक होने से यहाँ क्रमशः बतलाई गई हैं ॥३-४॥

सुरइगुणवीसवज्जं, इगसउओहेण बंधहिं निरया; ।
तित्थ विणा मिच्छि सयं, सासणि नपुचउविणा छनुई ॥५॥

भावार्थ : बंध योग्य 120 प्रकृतियों में से सुरद्विक आदि 19 प्रकृतियों को छोड़कर नारक जीव 101 प्रकृतियों को सामान्य से बाँधते हैं मिथ्यात्वगुणस्थानक में रहा नारक जीव तीर्थंकर नामकर्मो को छोड १०० प्रकृतिओं को तथा सास्वादनगुणस्थानक में नपुंसक चतुष्क को छोड ७६ प्रकृतियों को बांधते है ॥५॥

विणुअणछ्वीस मीसे, बिसयरि सम्मंमि जिणनराउजुआ; ।
इअ रयणाइसु भंगो, पंकाइसु तित्थयर-हीणो ॥ ६ ॥

भावार्थ : अनंतानुबंधी चतुष्क आदि छब्बीस प्रकृतियों को छोड़कर मिश्र गुणस्थान में सत्तर तथा तीर्थंकरनाम व मनुष्य आयुष्य जोड़ने पर सम्यक्त्व गुणस्थान में बहत्तर प्रकृतियों का बंध होता है ।

इस प्रकार नरक गति की यह सामान्य बंधविधि रत्नप्रभा आदि तीन नरकभूमियों के नारकों के चारों गुणस्थानकों में भी समझना चाहिए तथा पंकप्रभा आदि नरकों में तीर्थंकर नामकर्म के बिना शेष सामान्य बंधविधि पूर्ववत् समझनी चाहिए ॥६॥

अजिणमणुआउ ओहे, सत्तमिए नरदुगुच्चविणु ।
मिच्छे; इगनवइ सासाणे, तिरिआउ नपुंसचउ वज्जं ॥ ७ ॥

भावार्थ : सातवीं नरक में सामान्य से तीर्थंकरनाम कर्म और मनुष्य आयुष्य का बंध नहीं होता है । मनुष्य द्विक और उच्चगोत्र के बिना शेष प्रकृतियों का मिथ्यात्व गुणस्थानक में बंध होता है ॥७॥

सास्वादन गुणस्थानक में तिर्यंच आयु व नपुंसक चतुष्क के बिना 91 प्रकृतियों का बंध होता है तथा 91 प्रकृतियों में से अनंतानुबंधी चतुष्क आदि 24 प्रकृतियों को कम करने पर और मनुष्यद्विक एवं उच्चगोत्र इन तीन

प्रकृतियों को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक सम्यक्त्व गुणस्थानक में 70 प्रकृतियों का बंध होता है ।

अणचउवीस विरहिआ, सनरदुगुच्चा य सयरि मीसदुगे; ।
सतरसओ ओहि मिच्छे, पज्जतिरिया विणु जिणाहारं ॥८॥

भावार्थ : तिर्यंच गति में पर्याप्त तिर्यंच मिथ्यात्व गुणस्थानक में तीर्थंकरनामकर्म एवं आहारक द्विक को छोड़कर सामान्य से 117 प्रकृतियों का बंध करते हैं ॥८॥

विणु निरयसोल सासणि, सुराउ अणएगतीस विणु मीसे; ।
ससुराउ सयरि सम्मे, बीअकसाए विणा देसे ॥ ९ ॥

भावार्थ : सास्वादन गुणस्थान में नरक, त्रिक आदि सोलह प्रकृतियों को छोड़कर मिश्र गुणस्थानक में देवायु और अनंतानुबंधी चतुष्क आदि 31 को छोड़कर सम्यक्त्व गुणस्थानक में देवआयुष्य सहित सत्तर तथा देशविरति गुणस्थानक में दूसरे कषाय के बिना 66 प्रकृतियों का बंध करते हैं ॥९॥

इय चउगुणेसु वि नरा, परमजया सजिणओहु देसाई; ।
जिणइक्कारसहीणं नवसय-अपजत्त-तिरिअनरा ॥१०॥

भावार्थ : पर्याप्त मनुष्य पहले से चौथे गुणस्थानक में तिर्यंच की तरह ही कर्मप्रकृतियों का बंध करते हैं । मात्र

सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थंकर नामकर्म की प्रकृति बाँध सकते हैं-पर्याप्त तिर्यंच नहीं ।

पाँचवें से आगे के गुणस्थानकों में कर्मस्तव नाम के दूसरे कर्मग्रंथ में बताए गए अनुसार कर्मप्रकृतियाँ बाँधते हैं ।

अपर्याप्त तिर्यंच व मनुष्य तीर्थंकरनाम आदि 11 प्रकृतियों को छोडकर 109 का बंध करते हैं ॥१०॥

निरयव्वसुरा नवरं, ओहे मिच्छे इगिंदितिग-सहिआ; ।
कप्पदुगे विय एवं, जिणहीणो जोइ-भवण-वणे ॥११॥

भावार्थ : देवों को नरकगति की तरह बंध होता है, परंतु सामान्य से व मिथ्यात्व गुणस्थानक में एकेन्द्रिय त्रिक सहित बंध होता है । प्रथम दो देवलोक-सौधर्म व ईशान में इस तरह बंध होता है तथा ज्योतिष, भवनपति और व्यंतर में तीर्थंकर नामकर्म सिवाय बंध होता है ॥११॥

रयणुव्वसणंकुमाराइ - आणयाई उज्जोयचउ-रहिआ; ।
अपज्जतिरिअव्व नवसय, मिगिंदिपुढविजलतरुविगले ॥१२॥

भावार्थ : सनत्कुमार आदि देवता रत्नप्रभा नारकी की तरह बंध करते हैं ।

आनत आदि देवता उद्योत चतुष्क रहित बंध करते हैं । एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय जीव अपर्याप्त तिर्यंच की तरह बंध करते हैं ॥१२॥

छनवइ सासणि विणु सुहुमतेर, केइ पुणबिंति चउनवइ; ।
तिरिअनराऊहिं विणा, तणुपज्जत्तिं न जंति जओ ॥१३॥

भावार्थ : सात मार्गणावाले जीव सूक्ष्म आदि तेरह प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 96 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

कुछ आचार्यों के मतानुसार तिर्यंच आयुष्य और मनुष्य आयुष्य के बिना सास्वादन में 94 प्रकृतियों का बंध होता है, क्योंकि सास्वादन में वे जीव शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं करते हैं ॥१३॥

ओहु पणिंदितसे गइ-तसे जिणिक्कारनरतिगुच्चविणा; ।
मणवयजोगे ओहो, उरले नरभंगु तम्मिस्से ॥ १४ ॥

भावार्थ : पंचेन्द्रिय जाति और त्रस काय मार्गणा में सामान्य से ओघ बंध होता है, गतित्रस (तेउकाय-वायुकाय) में जिननाम आदि ग्यारह तथा मनुष्यत्रिक व उच्चगोत्र विना शेष १०५ का बंध होता है ।

मनयोग व वचनयोग में ओघ से बंध होता है । औदारिक काययोग में मनुष्य के समान बंध होता हैं । औदारिकमिश्र में आगे कहते हैं ॥१४॥

आहारछगविणोहे, चउदससउ मिच्छि जिणपणगहीणं; ।
सासणि चउनवइ विणा, तिरिअनराउ सुहुमतेर ॥ १५ ॥

भावार्थ : औदारिक मिश्रकाय योग में आहारक षट्क के बिना सामान्य से 114 प्रकृतियों का बंध होता है ।

तीर्थंकर नामकर्म आदि पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 109 का बंध होता है और सास्वादन में मनुष्य-तिर्यंच आयुष्य तथा सूक्ष्म आदि तेरह के बिना 94 प्रकृतियों का बंध होता है ॥१५॥

अणचउवीसाइ विणा, जिणपणजुअ सम्मि जोगिणो सायं; ।
विणु तिरिनराउ कम्मे वि, एवमाहारदुगि ओहो ॥ १६ ॥

भावार्थ : औदारिक मिश्रकाय योग में चौथे गुणस्थानक में अनंतानुबंधी आदि 24 के बिना तथा तीर्थंकर नामकर्म आदि पाँच युक्त 75 प्रकृतियों का बंध होता है ।

सयोगी गुणस्थानक में सिर्फ एक शाता का बंध होता है ।

कार्मण काययोग में भी तिर्यंच व मनुष्य आयुष्य के बिना इसी प्रकार बंध होता है । आहारक के दो योगों में भी ओघबंध होता है ॥१६॥

सुरओहो वेउव्वे, तिरिअनराउ-रहिओ अ तम्मिस्से; ।
वेअतिगाइम बिअतिअ, कसाय नव दुचउपंचगुणा ॥१७॥

भावार्थ : वैक्रिय काययोग में देवगति की तरह सामान्य से बंध होता है । वैक्रिय मिश्रकाय योग में

तिर्यंचआयुष्य और मनुष्यआयुष्य रहित बंध होता है। वेदत्रिक प्रथम, द्वितीय और तृतीय कषाय में क्रमशः नौ, दो, चार और पाँच गुणस्थानक होते हैं ॥१७॥

संजलणतिगे नव दस, लोभे चउ अजइ दुति अनाणतिगे; ।
बारस अचक्खुचक्खुसु, पढमा अहखाय चरिमचउ ॥१८॥

भावार्थ : संज्वलन त्रिक में 9, लोभ में 10, अविरति चारित्र में 4, अज्ञानत्रिक में 2, चक्षु-अचक्षुदर्शन में पहले बारह, यथाख्यात चारित्र में अंतिम चार गुणस्थानक होते हैं ॥१८॥

मणनाणि सग जयाई, समईअच्छेअचउ दुन्नि परिहारे; ।
केवलदुगि दो चरमा-जयाई नव मईसुओहिदुगे ॥ १९ ॥

भावार्थ : मनःपर्यवज्ञान में प्रमत्त से 7 गुणस्थानक, सामायिक, छेदोपस्थापनीय में चार गुणस्थानक, परिहारविशुद्धि में दो गुणस्थानक, केवलद्विक में अंतिम दो गुणस्थानक तथा मति-श्रुत ज्ञान व अवधिद्विक में अविरति आदि नौ गुणस्थानक होते हैं ॥१९॥

अडउवसमि चउ वेअगि, खइए इक्कार मिच्छतिगि देसे; ।
सुहुमिसठाणं तेरस, आहारगि निअनिअगुणोहो ॥२०॥

भावार्थ : उपशम सम्यक्त्व में अविरति आदि आठ गुणस्थानक, क्षयोपशम सम्यक्त्व में चार गुणस्थानक, क्षायिक

में ग्यारह गुणस्थानक होते हैं । मिथ्यात्व त्रिक, देशविरति और सूक्ष्मसंपराय में अपना-अपना गुणस्थानक होता है ।

आहारी मार्गणा में तेरह गुणस्थानक होते हैं । सर्वत्र अपने-अपने गुणस्थानकों के अनुसार ओघ बंध होता है ॥२०॥

परमुवसमि वट्टंता, आउं न बंधंति तेण अजयगुणे; ।
देवमणुआउ हीणो, देसाईसु पुण सुराउ विणा ॥ २१ ॥

भावार्थ : परंतु उपशम सम्यक्त्व में रहा हुआ जीव आयुष्य का बंध नहीं करता है, इस कारण से अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में देवायु व मनुष्य आयु को छोड़कर अन्य प्रकृतियों का बंध होता है । तथा देशविरति आदि में देवायु के बिना अन्य स्वयोग्य प्रकृतियों का बंध होता है ॥

ओहे अट्ठारसयं, आहारदुगूण-माइ लेसतिगे; ।
तं तित्थोणं मिच्छे, साणाइसु सव्वहिं ओहो ॥ २२ ॥

भावार्थ : पहली तीन लेश्याओं में आहारकद्विक को छोड़कर ओघ-सामान्य से 118 प्रकृतियों का बंध होता है । उसमें तीर्थंकर नामकर्म को छोड़कर मिथ्यात्व में 117 का बंध और सास्वादन आदि सभी गुणस्थानों में ओघ बंध होता है ॥२२॥

तेउ निरयनवूणा, उज्जोअचउ निरयबार विणु सुक्का; ।
विणु निरयबार पम्हा, अजिणाहारा इमा मिच्छे ॥ २३ ॥

भावार्थ : तेजोलेश्या में नरकत्रिक आदि नौ के बिना, शुक्ल लेश्या में उद्योत चतुष्क व नरकत्रिक आदि बारह के बिना और पद्मलेश्या में नरकादि बारह के बिना बंध होता है ॥२३॥

सव्वगुण भव्वसन्निसु, ओहु अभव्वा असन्नि मिच्छिसमा; ।
सासणि असन्नि सन्निव्व, कम्मणभंगो अणाहारे ॥ २४ ॥

भावार्थ : भव्य और संज्ञी मार्गणा में सभी स्थानों में सामान्य से बंध होता है ।

अभव्य और असंज्ञी का बंधस्वामित्व मिथ्यात्व गुणस्थानक के समान है ।

सास्वादन गुणस्थानक में असंज्ञी का बंध-स्वामित्व संज्ञी के समान एवं अनाहारक मार्गणा में बंधस्वामित्व कार्मण योग के समान है ॥२४॥

तिसु दुसु सुक्काइगुणा, चउ सग तेरत्ति बंधसामित्तं; ।
देविंदसूरि-रइअं, नेअं कम्मत्थयं सोउं ॥ २५ ॥

भावार्थ : पहली तीन लेश्याओं में पहले से चार, तेज और पद्म लेश्या में पहले से सात तथा शुक्ल लेश्या में तेरह गुणस्थानक होते हैं ।

इस प्रकार श्री **देवेन्द्रसूरि** द्वारा विरचित इस बंधस्वामित्व प्रकरण का ज्ञान '**कर्मस्त्व**' नाम के दूसरे कर्मग्रंथ के अनुसार जानना चाहिए ॥२५॥

• • •

: ज्ञान द्रव्य से लाभार्थी :

श्री मुनिसुव्रतस्वामी श्वेताम्बर मूर्ति पूजक जैन संघ

210/212, कोकरन बेसिन रोड,
विद्यासागर ओसवाल गार्डन,
कुरूक्कुपेट, चेन्नई 600021

KIRIT GRAPHICS
09898490091